ज्ञानविविधा
कला, मानविकी और सामाजिक विज्ञान की सहकर्मी-समीक्षित, मूल्यांकित, त्रैमासिक शोध पत्रिका

ISSN : 3048-4537(Online)
3049-2327(Print)
IIFS Impact Factor-2.25
Vol.-2; Issue-4 (Oct.-Dec.) 2025
Page No.-228-234
©2025 Gyanvividha
https://journal.gyanvividha.com

Author's :

डॉ. विभा कुमारी
सहायक प्राध्यापक, शिक्षा विभाग,
पटना विश्वविद्यालय, पटना.

Corresponding Author :

डॉ. विभा कुमारी
सहायक प्राध्यापक, शिक्षा विभाग,
पटना विश्वविद्यालय, पटना.

भारतीय मनिषियों का शैक्षिक चिंतन एवं पारंपरिक शिक्षा के पुर्णनिर्माण में योगदान

सारांश : यह भारत भूमि महान् है। यहाँ प्राचीन काल से ही मानवीय मूल्यों एव विशिष्ट परंपराओं ने व्यक्ति के सर्वांगीग विकास पर ध्यान केंद्रित किया है। भारतीय परंपरा हमेशा से ही अद्वितीय ज्ञान और प्रज्ञा का प्रतीक रहा है। इसमे ज्ञान और विज्ञान, लौकिक और परलौकिक, कर्म ओर धर्म तथा भोग ओर त्याग का अद्‌द्भुत समन्वय रहा है। उपर्युक्त ज्ञान परंपरा में 'भारत बोध' एक ऐसा केन्द्रीय विचार रहा है जिसमें सांस्कृतिक, राजनैतिक, ऐतिहासिक, मनोवैज्ञानिक, समाजशास्त्रीय विमर्श समाहित है। इन सभी विमर्शों में 'बोध' का तात्पर्य हमारी मातृभूमि के प्रतिअनुभू तिपूर्ण समझ एवं श्रद्धा से है। आज के संक्रांतिपूर्ण युग में विविध परम्पराएं, जीवन-शैलियाँ, सामाजिक-सांस्कृतिक परिस्थितियाँ मनुष्यों को दिग्भ्रमित कर रही है। इसके कारण वर्तमान समय में अनेक समस्याओं का सामना करना पड रहा है जो धर्म, विश्वास, शिक्षा, संस्कार, संस्कृति, नैतिकता आदि को प्रभावित कर रही है। ऐसी स्थिति में भारत के प्राचीन चिंतन और मनिषियों की जीवन दृष्टि व दिशा-बोध को जानना परम आवश्यक है जिन्होंने समय - समय पर एक थोपी हुई शिक्षा का समर्थन न करते हुए भारतीय ज्ञान परंपरा का समर्थन करने वाली शिक्षा को बढ़ावा देने में उल्लेखनीय योगदान दिया। इस प्रस्तुत आलेख के माध्यम से भारतीय मनिषियों जैसे स्वामी रामकृष्ण परमहंस,स्वामी विवेकानंद, रवीन्द्रनाथ टैगोर, एवं अन्य महापुरुषों के जीवन शैली एव शिक्षा द्वारा 'भारत–बोध' को रेखांकित किया गया है। इनके जीवनशैली एवम शिक्षा द्वारा ही एक बार फिर से वसुधैव कुटुंबकुम की भावना को पल्लवित कर के, अपनेपन की भावना विकसित हो सकेगी, जिससे हमें 'भारत-बोध' का ज्ञान होगा और इस ज्ञान की अविरल धारा सम्पूर्ण जगत को सींचकर भारत को फिर से समृद्धशाली बनाएगा।

संकेतशब्द : भारतीय ज्ञान -परंपरा, भारत-बोध, शिक्षण-पद्दती, शैक्षिक चिंतन।

प्रस्तावना :

धर्म की – जय हो।
अधर्म का – नाश हो।
प्राणियों में – सद्भावना हो।
विश्व का – कल्याण हो।
मेरा भारत – महान् हो।
मेरा भारत – महान् हो।

भारत की ज्ञान परंपरा संसार की सबसे प्राचीन एवं समृद्ध परंपराओं में से एक है। भारत प्राचीन काल से ही ज्ञान, दर्शन और शिक्षा का केंद्र रहा है। यहाँ शिक्षा केवल जीविका कमाने का साधन नहीं, बल्कि जीवन को 'सम्पूर्ण' बनाने का माध्यम भी था। पाश्चात्य शिक्षा के उद्देश्यों के प्रभाव से बचाने के लिए आधुनिक भारतीय मानिषियों ने न केवल आध्यात्मिक और दार्शनिक चिंतन को गहराई दी, बल्कि शैक्षिक आदर्श, शैक्षिक पद्धति और उद्देश्यों को भी दिशा प्रदान किया है। ब्रिटिशों के द्वारा थोपी गई पाश्चात्य शिक्षा का अनुकरण करने के फलस्वरूप शिक्षा के उद्देश्यों में विस्मयकारी परिवर्तन आने लगा जिसके कारण कई समस्याएं खड़ी हुई। यह धर्म, विश्वास, शिक्षा, संस्कार, संस्कृति, नैतिकता को बुरी तरह से प्रभावित किया (गौड़,2003)। तब ऐसी स्थिति में भारतीय मनिषियों ने न केवल अभूतपूर्व योगदान दिया, बल्कि उन्होंने भारतीय ज्ञान परंपरा को पूर्णजीवित करते हुए शिक्षा को आत्मा और परमात्मा के बोध, नैतिक मूल्यों के संरक्षण तथा समाज कल्याण,आत्मानुशासन और जीवन-मूल्यों से जोड़ा। उनके द्वारा दिए गए शिक्षा एवं दिशा-बोध केवल ज्ञानार्जन तक ही सीमित न होकर बल्कि व्यक्तिगत एवं सामाजिक बदलाव के लिए भी था। आरोपित पाश्चात्य शिक्षा के अनुकरण के फलस्वरूप देशी शिक्षा लुप्त होने के कगार पर थी। परंतु देशी शिक्षा को जानना, समझना और आत्मसात करना भारतवासियों के लिए जितना आवश्यक उस समय था उतना ही आज भी है, इसके द्वारा ही मानव बनाने वाली शिक्षा के सर्वांगीण उद्देश्यों का सफलतापूर्वक पुनः निर्माण किया सकता है। आधुनिक चिन्तको ने 'शिक्षा' को "मानव निर्माण" का साधन माना यही कारण है की भारत की शैक्षिक ज्ञान परंपरा ने न केवल देश को बल्कि पूरे विश्व को मार्गदर्शन देता रहा है। जिसे अपनाकर भारत फिर से उन्नति के शिखर पर पहुँच सकता है। इस प्रस्तुत आलेख के माध्यम से भारतीय मानिषियों जिनमें प्रमुख रूप से स्वामी रामकृष्ण परमहंस की जीवन शैली एवं स्वामी विवेकानंद तथा रवीन्द्रनाथ टैगोर के शैक्षिक चिंतन द्वारा 'भारतीय ज्ञान परंपरा' को आत्मसात कर शिक्षा के विभिन्न सकारात्मक दृष्टिकोण को दर्शाया गया है। जिससे वर्तमान में भी यदि आत्मसात कर लिया जाए तो यहाँ के सभी सदस्यों के बीच अपनी पुरातन भारतीय –शिक्षा के प्रति अपनेपन की भावना विकसित होगी, और हमें 'भारत-बोध' का ज्ञान होगा और इस भूमि की ज्ञान की अविरल धारा सम्पूर्ण जगत को सींचकर भारत फिर से समृद्धशाली बनेगा।

किसी भी देश की शिक्षा से ही उसकी समृद्धि की पहचान होती है। इक्कसवीं शताब्दी में पाश्चात्य शिक्षा के अनुकरण करने पर हुई दुर्दशा के कारण शिक्षा, धर्म, विश्वास, मूल्य, नैतिकता इत्यादि सभी कार्यकलापों में गिरावट देखे जाने पर भारतीय मानिषियों ने चिंतन कर आगामी शताब्दी में शिक्षा का स्वरुप कैसा हो इस पर बहुत गहराई से विचार –विमर्श किया ? (अंकुर, 2000)। भारतीय ज्ञान परंपरा के द्वारा शिक्षा में भारतीय मानिषियों ने संस्कृति का सम्यक ज्ञान का योगदान देकर भारतीय धर्म एवं संस्कृति के प्रति ज्ञान व आस्था को जोड़ने में व्यापक भूमिका निभाई।

भारतीय पारंपरिक शिक्षा का इतिहास : भारतीय जीवन में शिक्षा का महत्व सदियों से रहा है। कई विदेशी यात्रियों ने भी स्वीकार किया है की सामान्यतः भारत में लोग विद्या -प्रेमी होतें है यहाँ की भारतीय ज्ञान परंपरा अद्भूत है। यह इस बात का प्रमाण है की आस्ट्रिया में जन्मे इरा पावबिनो – द -बारथोलोम्यू ने सन् 1776 से 1789 तक चौदह वर्ष बिताने के पश्चात अपने प्रत्यक्ष अनुभव के आधार पर लिखा की "भारतीय शिक्षा तथा लेखन प्रणाली का विकास ईसा

पूर्व हो चुका था और वह अब भी यहाँ प्रचलित है। शायद इस पृथ्वी पर ऐसा ओर कोई देश नहीं है जहां भारतीयों के समान ज्ञान परंपरा की प्राचीन पद्दती और व्यवस्था का अनुसरण इतनी लंबी कालावधि तक हो " (स्वरुप देवेन्द्र,2007)। इसका सीधा संबंध यहाँ की उपयुक्त युगानुकूल शिक्षा -प्रणाली से थी। यहाँ उस समय अक्षर ज्ञान की सरल एवं अनूठी पद्दती प्रचलित थी। जिसकी सराहना अंग्रेजों ने भी की है। यह 'मॉनिटर / छात्र -अध्यापक / मद्रास / बेल / लेंकास्टर पद्धति' के रुप प्रचलित थी।

उपर्युक्त सभी पद्धतियों के नाम भले ही अलग – अलग हैं, किन्तु यह भारतीय शिक्षण -पद्दती थी जो ब्रिटिश पूर्व सदियों से भारत में प्रचलित थी। यह बाद में 'बेल पद्धति' के रुप में इंग्लैंड में भी लोकप्रिय हुई तथा 'लेंकास्टर पद्धति' के रूप में यूरोपीय देशों प्रचलित हुई।

भारत में शिक्षण की यह पद्धति बहुत ही सरल और कम खर्चीली थी। उस समय अक्षर – ज्ञान के लिए बालक गाँव के बाहर खुले आकाश के नीचे किसी बड़े वृक्ष की छाया तले बैठते थे और एक गुरु थोड़े ऊँचे आसन पर बैठकर सामने भूमि पर बैठे बालक का अक्षर – ज्ञान करवाते थे। अक्षर – ज्ञान के समय विद्यार्थी किसी एक अक्षर को मुहँ से पुकारकर बोलता और साथ ही अपनी उँगली से धरती या रेत या धूल पर उसे लिखता भी जाता था। गलत हो जाने पर वह हाथ से मिटाकर दोबारा लिखता था। इसी तरह लिखते –लिखते काफी अक्षर – ज्ञान हो जाने के बाद लकड़ी की तख्ती पर कलम से,और उससे आगे बढ़ने पर ताड़ – पत्र या कदली - पत्र का प्रयोग करता था। इस शिक्षण प्रक्रिया में लिखना और पढ़ना दोनों साथ - साथ हो जाते थे। अक्षर –ज्ञान के प्रथम पाठ से ही नीति और धर्म की शिक्षाओं का समावेश हो जाता था। प्रत्येक अक्षर को सिखाने के लिए कोई सरल – सा पद दोहराया जाता, जैसे – 'क ' अक्षर के लिए 'कक्का कर कर्ता की पूजा, वही निरंजन और ना दूजा' और 'द 'अक्षर के लिए 'दोष न दीजै काहू, दोष करम अपनेहू ' जैसी कविताओं का पाठ कराया जाता था। इस तरह, इन पदों को दुहराने से बच्चों में अक्षर ज्ञान के साथ -साथ मूल्यों का भी बोध सुगमता पूर्वक हो जाता था। इस शिक्षा – प्रणाली की एक बड़ी विशेषता यह थी विद्यार्थी 4 -5 के समूह में पढ़ते थे और उनका निर्देशन किसी बड़े विद्यार्थी द्वारा किया जाता था। यह शिक्षण - पद्धति भारत के पाठशालयों में छात्र –अध्यापक पद्धति के नाम से प्रचलित था। इस पद्धति के अंतर्गत बड़ी कक्षा के छात्र छोटी कक्षा के छात्रों को पढ़ाने का काम करते थे, जिसके कारण पूर्णकालिक अध्यापक की आवश्यकता नहीं रहती थी एवं एक अध्यापक की देखरेख में अनेक कक्षाएं एक साथ चल सकती थीं। इसमे अनुशासन की समस्या भी अपने आप हल हो जाती थी, क्योंकि प्रत्येक छात्र छात्र होने के साथ-साथ मॉनिटर एवं अध्यापक का कार्य भी करता था। इस प्रकार एक अध्यापक को छात्रों में से ही अनेक सहायक मिल जाते थे। उस समय यह शिक्षण - पद्धति इतनी समृद्ध थी की इसका अनुकरण कर इंग्लैंड भी इसका ऋणी रहा है। इसे जेम्स कार्डीनर ने अपनी संस्मरणात्मक रचना 'बोएज ऑफ इंडिया' में इस पद्धति का बाद सजीव चित्रण करते हुए लिखा – "इस पद्धति के लगातार लागू रहने पर स्कूल में कोई भी व्यक्ति खाली नहीं रह सकता। स्कूल में घुसने पर आपको कोई बच्चा बेकार नहीं दिखाई देगा, बिना उदेश्य के कोई बगलें झाँकता नहीं मिलेगा। पूरा दृश्य एक ऐसी जीवंत सक्रियता का दृश्य होता है मानो किसी कपड़ा बुनने या सूत कातने की मशीन के अनेक कल-पुरजे एक गतिमान इंजन से चालित होकर अपनी –अपनी जगह काम में जुटें हों। इस पद्धति से प्रत्येक बच्चे को काम और व्यक्तिगत धन मिल जाता है इससे एक अध्यापक को मानो सौ हाथ,सौ आँखें या सौ पंख एक साथ प्राप्त हो जाते हैं। "

इस भारतीय पद्धति को एंडयू बेल ने पुस्तक 'एन एक्सपेरिमेंट इन एजुकेशन' में प्रस्तुत किया है। काफी समय तक इस पद्धति के मूल आविष्कारक पर विवाद भी होता रहा। कुछ समय तक यह भी नहीं प्रकट किया गया था की यह पद्धति भारत से उधार ली गई है। किन्तु बेल की समाधि पर लगाए गए पत्थर पर उत्तकीर्ण अभिलेख से पता चल पाया की यह 'मद्रास पद्धति' से ली गई थी। (स्वरुप, 2007) यह व्यवस्था भारतीय ज्ञान परंपरा में शिक्षा की अनूठी पद्दति के रूप में यहाँ प्रचलित थी। परंतु धीरे - धीरे शिक्षा के उद्देश्यओं में परिवर्तन होने के कारण यह

पारंपरिक पद्दती का विघटन होने लगा।

पारंपरिक शिक्षा के विघटन का कारण : इसमें कोई संदेह नहीं की बेल द्वारा अंगीकृत 'मद्रास पद्दती' के प्रचलन ने इंग्लैंड में शिक्षा प्रसार की दृष्टि से एक क्रांति ला दी थी परंतु भारत में पराधीनता के बाद यह ज्ञान की सरिता सूखती ही चली गई। यहाँ हम देख सकते हैं की एक अनूठी ज्ञान परंपरा में जहां अक्षर – ज्ञान के माध्यम से ही नीति, मूल्य और धर्म का समावेश हो जाता था वहीं ब्रिटिश शासन की शिक्षा -प्रणाली ने शिक्षा के उद्देश्य को केवल सरकारी नौकरियों से जोड़ना था। इसे नौकरियों से जोड़ने के पीछे उनका दोहरा उद्देश्य था पहला यह की इतने विशाल देश के शासन –प्रबंध को चलाने के लिए सस्ते वेतन पर वफादार और कुशल भारतीय कर्मचारियों को प्राप्त करना। दूसरा नौकरियों को प्रलोभन देकर भारत के उच्च एवं प्रभावशाली वर्गों के लोगों को अंग्रेजी भाषा के माध्यम से यूरोपीय ज्ञान प्राप्त करने के लिए प्रवृत करना। मैकाले की इस योजना के पीछे देश से जुड़ी गहरी संस्कृति की जड़ें को उखाड़ फेकना था और ऐसे भारतीय पीढ़ी का निर्माण करना था, जो मैकाले के शब्दों में "केवल रक्त ओर रंग से भारतीय होंगें,किन्तु रुचि,विचार, आचार व ज्ञान की दृष्टि से अंग्रेज होंगें "और" जो हम शासकों और करोड़ों प्रजाजनों के बीच दुभाषियों का काम करेंगें "(स्वरूप, 2007)। इस तरह से भारत में अंग्रेजी शिक्षा-प्रणाली का बीज बोने का प्रयास किया गया।

इस तरह से देशी शिक्षा व्यवस्था को तहस – नहस किया जाने लगा। इसके परिणामस्वरूप भारत के देशज विद्यालय करीब लुप्तप्राय होने के कगार पर थे और देशज शिक्षा -पद्दती अवरुद्ध हो गई थी। लोगों पर अंग्रेजी शिक्षा का प्रभाव व्यापक रूप से पड रहा था। कई बुद्धिजीवियों के मन में अपनी प्राचीन भारतीय विश्वासों और परम्पराओं के प्रति ही विद्रोह की भावना पनप रही थी। जिससे यहाँ की स्थिति पतन के कगार पर पहुच चुकी थी। इसका मुख्य कारण यह रहा कि मुट्ठी भर लोगों ने देश ही संपूर्ण शिक्षा और बुद्धि पर एकाधिपत्य कर लिया। इसके प्रभाव से शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य पूरी तरह बदल गया।

ऐसी अराष्ट्रीय शिक्षा –प्रणाली के विरुद्ध मानिषियों में आक्रोश पैदा होना स्वाभाविक था। जो भारतीय ज्ञान परंपरा को आहत कर रही थी। ऐसी स्थिति में उस समय शिक्षा एवं संस्कृति को बचाने के लिए भारतीय मानिषियों द्वारा अभूतपूर्व योगदान दिया गया। जिसके द्वारा भारतीय ज्ञान परम्परा को आत्मसात किया जा सके। उस समय भारत की देशी शिक्षा – व्यवस्था को मृत्यु के मुख में जाने से रोकने के लिए भारतीय चेतना के प्रतिनिधि बनकर रामकृष्ण परमहंस,स्वामी विवेकानंद, गुरुदेव रवींद्र नाथ टैगोरे, आदि बुद्धिजीवियों,मनिषियों,सन्यासियों द्वारा अथक प्रयास किए गए।

स्वामी विवेकानंद के शैक्षणिक विचार एवं प्रयास : स्वामी विवेकानंद कि ऐसी पाश्चात्य शिक्षा के बारे में विचार था की विदेशी भाषा में दूसरे के विचारों को रटकर,अपने मस्तिष्क में भरकर और विश्वविद्यालयों की कुछ पदवियाँ प्राप्त करके अपने आप को शिक्षित समझना ये शिक्षा का उदेश्य नहीं है। इससे हमारे देश का कोई लाभ नहीं होगा। वह शिक्षा, जो जनसमुदाय को जीवन –संग्राम के उपयुक्त नहीं बनाती,जो उनकी चारित्रय - शक्ति का विकाश नहीं करती,जो उनमें भूत - दया का भाव और सिंह का साहस पैदा नहीं करती,उसे हम शिक्षा का नाम नहीं दे सकतें हैं।

इनका विचार था की शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जिससे चरित्र बने, मानसिक बल बढ़े, बुद्धि का विकाश हो और मनुष्य अपने पैरों पर खड़ा हो सके। इनका कहना था की देश उसी अनुपात में उन्नत हुआ करता है जिस अनुपात में वहाँ के जन- समुदाय में शिक्षा और बुद्धि का प्रसार होता है। इनका विचार था की यदि हम पुनः उन्नतः होना चाहते हैं तो हमें जन – समूह में शिक्षा का प्रचार करना होगा। ताकि पारंपरिक शिक्षा जन - समूह तक जाकर उनके जीवन को उपयुक्त बनाए। परंतु उन्होंने यह भी स्वीकार किया की जनसमूह में शिक्षा के अभाव का कारण प्रमुख रूप से गरीबी है। शिक्षा जन समूह तक पहुच सके इसके लिए उन्होंने एक ऐसी पारंपरिक शिक्षण –पद्दती का सुझाव दिया की, चाहे गरीब बालक खेतों में काम करने के कारण शिक्षा लेने पाठशाला नहीं आ सकते लेकिन शिक्षा तो उनके पास पहुचना ही चाहिए। जैसे - हमारे देश में सहसत्रों निष्ठावान, स्वार्थ – त्यागी सन्यासी हैं, जो एक ग्राम से दूसरे में धर्मोपदेश देने

जाते रहते हैं। यदि उनमें से कुछ को भौतिक विषयों के भी शिक्षक के रूप में संगठित किया जा सके तो वे एक स्थान से दूसरे स्थान को, एक दरवाजे से दूसरे दरवाजे को न केवल धर्मोपदेश करते हुए वरन् शिक्षा – कार्य भी करते हुए जायेगें। मान लिया जी की इनमे से दो मनुष्य संध्या समय किसी गाँव में अपने साथ मैजिक लैन्टर्न, ग्लोब और कुछ नक्शे आदि लेकर जाएं तो वे किसी भी अज्ञान मनुष्यों को बहुत सा ज्योतिष और भूगोल सीखा सकतें हैं। भिन्न –भिन्न देशों की कहानियाँ बताकर उन गरीबों को जन्म भर में पुस्तकों के द्वारा जो जानकारी प्राप्त होती, उससे कई सौ गुणा अधिक कानों के द्वारा सीखा सकतें है। आधुनिक विज्ञान की सहायता से उनके ज्ञान को प्रज्वलित करना एवं उन्हें इतिहास,भूगोल,विज्ञान एवं साहित्य पढ़ाना और इसी के साथ – साथ इन्हीं के धर्मों के गंभीर सत्यों की भी शिक्षा दिया जा सकता है। इनके द्वारा किए प्रयास आने वाले समय के लिए भी मार्गदर्शन देता रहेगा।

इन्होंने न केवल शिक्षा के उद्देश्य बल्कि शिक्षक और शिष्य के संबन्ध के बारे में कहा की, शिक्षा का अर्थ – 'गुरुगृह – वास' है। इन्होंने कहा की शिक्षक अर्थात् गुरु के व्यक्तिगत जीवन के बिना कोई शिक्षा नहीं हो सकती है। शिष्य को बाल्यावस्था से ही ऐसे व्यक्ति (गुरु) के पास रहना चाहिए, जिनका चरित्र जाज्वल्यमान् अग्नि के समान हो, जिससे उच्चतम शिक्षा का सजीव आदर्श शिष्य के सामने रहे (संकलित,2007)। इनके जीवन में गुरु के रूप में रामकृष्ण परमहंस का प्रबल योगदान था। जिनके आदर्श ही सम्पूर्ण शिक्षा जगत के लिए मिशाल है।

रामकृष्ण परमहंस के परम आदर्श और शिक्षा : रामकृष्ण परमहंस का उच्चतम जीवन आदर्श, स्वामी विवेकानंद जो की उन्ही के परम शिष्य थे के लिए सजीव आदर्श का प्रमाण रहा है। यहाँ शिक्षण पद्दती के रूप में गुरु ने स्वयं के जीवन को ही उदाहरण बन कर प्रस्तुत किया है। गुरु के रूप में इनके आदर्श ऐसे थे की ये जगत् में किसी में बुरा देखने या बुरा चिन्हित करने की क्षमता इनमे नहीं थी। हर किसी में भली बातों के अलावा,वे कुछ भी नहीं देखते थे। उनका कहना था की महापवित्रता और महत्याग ही धर्म-लाभ का एकमात्र उपाय है। वेद भी कहता है – धर्म या पुत्रोत्पादन के द्वारा नहीं, एकमात्र त्याग के द्वारा ही अमृत-तत्व प्राप्त किया जाता है।

रामकृष्ण परमहंस इसका जीता जागता उदाहरण त्याग की साकार प्रतिमूर्ति के रूप में थे। हमारे देश में ऐसी परंम्परा रही है की जो लोग सन्यासी होते है, उन्हें समग्र रूप से अपना धन-ऐश्वर्य, मान –सम्मान त्याग कर देना पड़ता है। इन्होंने इस आदर्श का अक्षर-अक्षर अपने कार्यों में उतारा था। वे अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार कभी सोना स्पर्श तक नहीं करते थे और उनकी कंचन त्याग – स्पृहा ने उनके स्नायुमंडल पर इस हद तक अपना प्रभाव – विस्तार कर लिया था की नींद में भी अगर कोई उनकी देह से कोई धातु –मुद्रा का स्पर्श करा देता था तो उनकी मांसपेशियाँ सिकुड़ जाती थीं और उनकी समूची देह मानो उस धातु-द्रव्य को स्पर्श करने से इनकार कर देती थी। वे काम-कंचन पर विजय के जीवंत उदाहरण थे। वर्तमान सदी में ऐसे इंसान की अतिशय जरूरत थी। आजकल के युग में जिसे 'जरूरी –द्रव्य' समझा जाता है लोग इसके बिना एक दिन भी नहीं जी सकते और उनकी जरूरते दिन प्रति बढ़ती जाती हैं,ऐसे में कम - से कम किसी एक ऐसे व्यक्ति की जरूरत है, जो अनास्थावादियों के समक्ष यह प्रमाण दे सके कि अभी भी एक ऐसा व्यक्ति मौजूद है, जो सांसारिक धन - रत्न और यश – मान के लिए बूँद भर भी लालायित नहीं है। (शंकर,2009)

जीवन में योग और भोग का समन्वय और फिर इस से भी ऊपर उठ कर परम सत्य का दर्शन कैसे हो इसके लिए भारतीय गुरु परम्परा की आवश्यकता पर बल देती है। ज्ञान वही दे सकता है जिस के पास स्वयं ज्ञान हो चाहे उसे वह ज्ञान दूसरे से मिला हो या स्वानुभव से। साधारण ज्ञान गुरु से मिल जाता है किन्तु परम ज्ञान के मार्ग पर वही ले जा सकता है जिसने उस ज्ञान का अनुभव स्वयं किया हो। (त्रिपाठी,2005) इनका मानना था की 'पहले स्वयं धार्मिक बनो और सत्य की उपलब्धि करो। 'इसके लिए किसी मतामत, संप्रदाय, गिरिजा या मंदिर से अपेक्षा नहीं करना बल्कि हर मनुष्य के अंदर ही धर्म विधमान है और जितना ही यह भाव मनुष्य में विकसित होता है,उतना ही उसके अंतस् में कल्याण करने की शक्ति आती है। ये लोग ही श्रेष्ठ आचार्य बनकर जगत् में ज्ञान का संचार कर सकते हैं। (शंकर,2009)

गुरु रवींद्रनाथ टैगोर द्वारा शिक्षा में योगदान : एक, जो शैक्षिक विचारक और दार्शनिक रवींद्र नाथ टैगोर से आता है, जहाँ वे राष्ट्रवाद से नहीं बल्कि अंतर्राष्ट्रीयता से उपनिवेशवाद का सामना करने का आह्वान करते हैं - "जहाँ मन भयमुक्त हो, और सिर ऊँचा हो, जहाँ दुनिया संकीर्ण घरेलू दीवारों द्वारा टुकड़ों में विभाजित न हो..."(गीतांजलि)। ज्ञान का संचार के ऐसे ही प्रयास गुरु रवींद्रनाथ टैगोरे ने अपने शिक्षा –आदर्शों को व्यावहारिक रूप देने के लिए चार शिक्षा संस्थानों का निर्माण किया।पहली संस्था सन् 1901 में कलकत्ता से 100 मील दूर बोलपुर के निकट 'शांति निकेतन 'विद्यालय आरंभ किया। दूसरी संस्था 'श्री निकेतन' जिसे सन् 1922 में ग्रामोंद्वारा के लिए निकटवर्ती ग्राम सुरुल में शुरु किया। तीसरी संस्था 'शिक्षा - सत्र ' सन् 1924 में ग्रामीण युवकों के प्रशिक्षण के लिए आरंभ की गई तथा सन् 1922 में सब संस्थाओं को मिलाकर 'विश्वभारती 'की स्थापना की, जिसकी कल्पना एक अन्तराष्ट्रीय विश्वविद्यालय के रूप में थी।

गुरुदेव द्वारा स्थापित शांति निकेतन में भारतीय आदर्शों के अनुरुप शिक्षा दी जाती थी और समस्त अंतेवासी एक बृहत् परिवार के परिजनों की भाँति प्रेम तथा सौहार्द से रहते थे। शांति निकेतन का दैनिक जीवन बड़ा मोहक और शिक्षाप्रद था। यहाँ की शिक्षण –पद्दती छात्रों को देशी व्यवहार करने के अनुकूल बनाना था। यहाँ छात्र सूर्योदय से बहुत पहले ही उठ जाते थे और भजन गाते हुए आश्रम की प्रभात –फेरी करते थे। कुछ समय के बाद प्रत्येक छात्र अपना-अपना आसान लेकर खुले मैदान में बैठकर मनन किया करते थे। फिर विद्यालय का कार्य आरंभ होने पर सब छात्र एवं अध्यापक वृक्षों की छाया में सामूहिक प्रार्थना करते थे। फिर साढ़े दस या ग्यारह बजे तक पढ़ाई होती थी। मुक्त गान या वृक्षों के नीचे आठ –आठ, दस –दस छात्र शिक्षक को घेरकर बैठ जाते और उससे प्रश्न पूछते थे। बालक नंगे पैर घूम-घूमकर अथवा वृक्षों पर बैठकर पढ़ते थे। प्रातः कालीन अध्ययन समाप्त कर छात्र नहाते -धोते और भोजन करते थे।

अपराह्न दो बजे से फिर पढ़ाई शुरु होती ;किन्तु अब हस्तकला, कताई – बुनाई, काष्ठकला, चित्रांकण, संगीत आदि का कार्य करवाया जाता था। इस समय पुस्तकीय कार्य बहुत काम होता था। चार बजे तक कक्षाएं समाप्त हो जातीं और बालक खेल के मैदान की ओर दौड़ पड़ते। कुछ खेतों व वनों में कार्य करने चले जाते तो कुछ ग्राम –सेवा के लिए निकाल जाते। वे औषधियाँ भी वितरित करते थे। सूर्यास्त होते ही सब लौट आते और कुछ क्षणों के लिए मौन मनन करते। रात्री में विनोद गोष्ठियाँ होती, जिनमें गुरुदेव कहानियाँ सुनाते,गीत गाते,नाटक और सम्मेलन होते। नौ बजे रात्री में भजन मंडली फिर घूमती और तदनन्तर सब शयन करने चले जाते।

इस प्रकार टैगोरे प्रकृति को जीवंत मानते थे, जो अपने अनेकशः, रूपों, रंगों, और लय से मनुष्य से कहीं अधिक स्पष्ट ढंग से ब्रम्ह की अभिव्यक्ति करती है जिससे वह उसके परिष्कारक, प्राणदायक और शिक्षाप्रद प्रभाव में आ सके।

गुरुदेव का कहना था की "अपनी माँ की कोमल स्नेहमयी गोद छोड़ते ही जब बच्चा जगत की कठोरता से टकराता है, तब प्रकृति ही उसका प्यार एवं सहानुभूतिपूर्वक लालन- पालन करती है "। भूमि,जल और आकाश के संपर्क में आकर उसके शरीर का सम्पूर्ण विकास होता है,उसमें क्रियाएं करके वह शारीरिक संतुलन और निपुणता लाता है। (मिश्र,2007)

अथर्ववेद में भी कहा गया है - **माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः।(अथर्ववेद 12 .1 .12)**

अर्थात् ये धरती हमारी माता है और हम इसके पुत्र हैं। 'छिति जल पावक गगन समीरा' से बने जगत् को ध्यानपूर्वक देखना और उसके महत्व को समझना ही सच्ची शिक्षा मानते थे।

प्रकरतिरेव शरणम्। (लसल्लतिका - शुचि पर्यावरणम्)

अर्थात् प्रकृति ही हमारा आश्रय है।

टैगोरे ने यूरोप के संकीर्ण राष्ट्रीयता की भावना जिसका अंत प्रथम विश्वयुद्ध के रूप में हुआ उसके विरोध में आवाज उठाई। इनका कहना था की राष्ट्र की कल्पना पाश्चात्य है, भारत में तो समाज की कल्पना थी,जो विश्वबंधुत्व

और 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' की भावना से ओत - प्रोत थी जो की विश्व में कहीं भी कोई रह रहा है,उसके बारे में बुरे विचार न रखना है। आज देशों के बीच आवागमन बढ़ने,उनकी भौगोलिक सीमाएं टूटने और अन्योंन्याश्रय संबंध स्थापित होने से हमारे सम्मुख मात्र एक देश ही नहीं वरन् समग्र पृथ्वी की समस्याएं हैं। अतएव हमें अपनी दृष्टि व्यापक करके अन्तर्राष्ट्रीयता को स्वीकार करना चाहिए और विभिन्न प्रजातियों को एक संघ के रूप में मानवता और सद्भावना को बढ़ाना चाहिए, जिससे संतुलित विश्व का निर्माण हो सके। पूरब और पश्चिम मानव जीवन के दो आधारभूत तत्वों – आत्मा और पदार्थ –का प्रतिनिधित्व करते हैं। किन्तु दोनों का गंतव्य एक है - सत्य की खोज।

अंतरराष्ट्रीयता बढ़ाने के लिए मूल्यों को विकसित करना होगा,जिनमे से प्रमुख हैं।

1. मानव की आधारभूत एकता को अनुभव करना;
2. सब लोगों का एक सर्वनिष्ठ भाग्य है, जिसमें सबके हित अंतर्गथित हैं ;
3. ज्ञान का भंडार सभी के प्रयासों से निर्मित हुआ है,जिस पर सभी का अधिकार है।
4. भौगोलिक सीमाएं छिन्न–भिन्न होने से विश्व की परिस्थितियाँ बदल गईं हैं और वह एक संघ बनने की ओर अग्रसर है;
5. एक युग में व्यक्तिगत त्याग करके मानव एकता की ओर बढ़ना होगा ;
6. अंतरर्राष्ट्रीय समस्याओं को सुलझाने के लिए युद्ध कोई समाधान नहीं है।

इन मूल्यों को विकसित करने के लिए स्पष्ट विचार और तर्क की शक्तियों को उन्नत करना होगा। जो भारतीय ज्ञान परंपरा आधारित शिक्षा द्वारा उपलब्ध करना संभव हो सकेगा। (मिश्र, 2007)

निष्कर्ष : इस प्रकार कहा जा सकता है की पराधीनता के साथ थोपी गई शिक्षा के उद्देश्य भारतीय शिक्षण-पद्दती और मूल्यों के विरुद्ध एक सुनियोजित शैक्षणिक षड़यंत्र था। जिसके कारण भारतीय धर्म, दर्शन, नीति, संस्कार का उदीयमान पीढ़ी के जीवन से नितांत लोप होता चला गया। उपरोक्त भारत के संस्कारवान् प्रबुद्ध अपने प्रयासों द्वारा शिक्षा के उदेशयों को पूर्णजीवित करने का प्रयास किया यह निश्चय ही सम्पूर्ण मानव जाति के कल्याण में भारत – बोध बनकर सहयोगपूर्ण भूमिका निभाएगा। इसे आत्मसात् यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है की भारत अतीत के गर्भ में समाए अपने गौरव को शीघ्र ही पुनः प्राप्त कर सकेगा। आधुनिक शिक्षा और प्राचीन शिक्षा के बहुमूल्य योगदान के बीच सामंजस्य बनाकर उसे प्रभावी रूप से लागू कर भविष्य के भारत का सृजन किया जा सकता है।

संदर्भ सूची :

1. श्रीश्री माता आनंदमयी पीठ. भारत – बोध, प्रथम संस्करण (वि . स . 2055 . ई . सन् 1998)
2. गौड़ रामशरण (2003) भारतीय प्राचीन कथाओं में सामाजिक, सांस्कृतिक चेतना, संस्कृति,अंक – 6, सितम्बर।
3. अंकुर देवेन्द्र राज (2000) बदलता सांस्कृतिक परिदृशय, संस्कृति 2000, नवांक – अक्टूबर।
4. स्वरुप देवेन्द्र (2007) राष्टीय शिक्षा आंदोलन, भारत में ब्रिटिश शिक्षा नीति का विकास, प्रतिभा प्रतिष्ठान, नई दिल्ली
5. स्वरुप देवेन्द्र, (2007) राष्ट्रीय शिक्षा आंदोलन, स्वामी विवेकानंद के शिक्षा दर्शन, संकलित,प्रतिभा प्रतिष्ठान, नई दिल्ली।
6. शंकर (2004) विवेकानंद की आत्मकथा,2009, प्रभात पब्लिकेशन।
7. आत्मानंद मिश्र (2007), प्रथम संस्करण, राष्ट्रीय शिक्षा आंदोलन, रवींद्रनाथ के दर्शन एवं प्रयोग, प्रतिभा प्रतिष्ठान, नई दिल्ली
8. टैगोर, रवींद्रनाथ (1913)। गीतांजलि: गीतों की भेंट (डब्ल्यू. बी. यीट्स, अनुवादक)। मैकमिलन।

•